ISSN: 2456–4397 RNI No.UPBIL/2016/68067 Vol-4* Issue-12* March- 2020
Anthology : The Research

संगीत में ताल की उपादेयता

सारांश

भारतीय संगीत में लय निर्वाह की सबसे प्राचीन प्रणाली हाथ से ताल देने कि रही होगी एवं साथ ही पदचाप द्वारा लय निर्वाह के प्रयास हुये होगें। केवल भारत ही नहीं लयात्मकता के क्षेत्र में सभी देशो में यही क्रम रहा है। अन्य देशो का संगीत केवल लय साम्यों की विविधता में ही सीमित रह गया। किन्तु भारतीय संगीत की विभिन्न धाराओं में इसी लयात्मकता का ताल शास्त्र के रूप में जो व्यवस्थित व वैज्ञानिक विकास हुआ उसके समान दृष्टांत अन्य देशों की लय एवं तालों के स्वरूपो में दृष्टिगोचर नहीं होते।

निधि श्रीवास्तव
एस.एस. खन्ना महिला महाविद्यालय, इलाहाबाद, भारत

प्रस्तावना

किसी विद्वान ने ठीक ही कहा है कि अनिबद्र या तालविहीन संगीत आरणयक संगीत है तथा निबद्व या तालयुक्त संगीत समाजिक संगीत है। बिना ताल के केवल स्वरो का आनन्द हृदय में उल्लास व उत्तेजन का सृजन करने में असमर्थ होता है। एवं अनिबद्ध संगीत के निरंतर श्रवण से हृदय में उदासीनता छा जाती है। संगीत में छंद और ताल ही यथार्थतः स्वरो को गति प्रदान करते है। ताल संगीत को एक निश्चित नियम या समय के बंधन में बाधता है। जिस प्रकार जीवन में निश्चित समय क्रम का अभाव सुख और समृद्धि का अभाव है उसी प्रकार तालहीन विश्रृंखल संगीत में सार्थकता नहीं। 'ताल' संगीत में विभिन्न सौन्दर्यपूर्ण चलन शैलियो का विकास करता है, जिससे संगीत के समय कि रक्षा होती है। ताल संगीत को अनुशासित कर उसके सुगठित रूप, स्थायित्व एवं चमत्कारिता से श्रोतओं को विभोर कर देता हैं। ताल के ही कारण प्राचीन एवं वर्तमान संगीत को स्वर एवं बोललिपि द्वारा भविष्य के लिए सुरक्षित रखना सम्भव हुआ है। निश्चित ताल गति के फलस्वरूप ही संगीत के क्रमिक आरोह अवरोह विराम आदि अत्यन्त प्रभावोत्पादक हो जाते है। तालो में गति भेद उत्पन्न कर रस निश्पत्ति सम्भव होती है। करूणा श्रृगार रौद्र वीभत्स आदि रसो के लिये तालो कि विभिन्न गतियो का बड़ा महत्व है।

साहित्य में छन्द का एवं संगीत में ताल का जन्म स्वाभाविक रूप में हुआ होगा। जीवन के कृमिक विकास में इन्हीं छन्दों या तालो का अनुभव किया गया होगा। मानव सभ्यता के उदय के साथ ही हृदय कि उत्तेजना और उल्लास का नृत्य में चित्रण हुआ। वैज्ञानिक प्रमाणों के आधार पर कहा जा सकता है कि समस्त ब्रहम्मांड लय गति में बंधा हुआ है। दैनिक जीवन में मानव, पशु–पक्षी, चर–अचर सभी निश्चित समय पर अपना कार्य करते है नदियो के ज्वार भाटे में भी एक निश्चित क्रम है। विश्वविद्याता द्वारा सृजित समस्त प्रकृति के समय क्रम को जो निश्चित गति हैं वही संगीत में ताल बनकर उसे उपयोगी रसपूर्ण और स्थाई स्वरूप देती है।

1) संगीत एवं समय बंधन

सुन्दरता वस्तु कि गति होने पर नीरस एवं अग्रहाय होने लगती है संगीत कि निरत्तर अनिबद्ध स्वर संगति रसिक मन में वितृष्णा उत्पन्न न करे इसलिए समय का या लयात्मक ध्वनि का समावेश आवश्यक प्रतीत हुआ होगा, ताल संगीत में स्फूर्ति उत्पन्न कर इस वितृष्णा को दूर करते है और श्रोतागण ताल के निश्चित समय खण्डो की आवृत्ति में के विभोर हो अनिर्वचनीय सुख प्राप्त करते है।

2) सौन्दर्यपूर्ण चयन शैलियो का विकास

समय के निश्चित बंधन के अतिरिक्त ताल संगीत में चमत्कारपूर्ण चलन – शैलियों का विकास करता है। इन चलन शैलियों के बिना संगीत के आनन्द का स्पुरण संभव नहीं मौलिक तत्वों में समन्वित होकर उनकी कला चौगुनी

प्रभावोत्पादक शक्ति से समृद्ध होती है गीत में ताल की इन्ही चलन शैलियो के द्वारा कुशल गायक 'ठुमक चलत रामचन्द्र' जैसे गीतो में रामचन्द्र का ठुमकना साकार देते है। ताल की विभिन्न शैलियों गीत के शब्दो में प्राणो को संचार कर देती है।

सांगीतिक समय का अभाव

कला एवं साहित्य में उत्कृष्ता का परिचायक सत्यम्–शिवं–सुंदरं है। कला में समय के आधार पर ही शिव अथवा कल्याणकारी भावनाओं का विकास संभव होता है संगीत में इस संयम का ताल के स्वरूप में प्रदर्शन होता है। संगीत का लय या ताल रूपी संयम ही यह नियत्रित करता है कि विलम्बित गायन वादन या नृत्य इतना अधिक विलम्बित न हो जाय कि रस निष्पति असंभव हो जाये औ न इतना दुत हो जाय कि गति की चकाचौध में कला का सौष्ठव नष्ट हो जाय। फलस्वरूप मर्यादित संगीत शैलियों में गायन–वादन का असंभावित प्रदर्शन नहीं हो पाता था और कला कि प्रदर्शन रीतियो में प्रारम्भ से अंत तक नवीनता मौलिकता और शाश्वत सौन्दर्य का निर्वाह होता था अतएवं संगीत में संयम स्वरों की रक्षा हेतु ताल का महत्वपूर्ण स्थान है।

संगीत का स्थायित्व एवं संरक्षण

ताल विहीन या अनिबद्ध संगीत कच्चे आम या नीबू के समान होता है एवं निबद्ध संगीत उनके अचार या मुरब्बे के समान। जिस प्रकार कच्चे आम या नीबू को अधिक काल तक सुरक्षा संभव नही, उसी प्रकार अनिबद्ध संगीत प्रदर्शन के साथ ही लोप हो जाता है, और उसे स्थायी रूप देना संभव नहीं होता। आज भी जो उपलब्ध प्राचीन संगीत है उसके आधार पर 'तानसेन' बैजू या अन्य संगीतज्ञो ने किस प्रकार अनिबद्ध रागालाप किये होगे उसकी निश्चित कल्पना हमारे सम्मुख नहीं हैं, किन्तु इस महान संगीतज्ञो के तालबद्ध गीत आज भी उपलब्ध है जिनके स्वर एवं ताल कि श्रृंखला के कारण नष्ट होने से बचे रहे।

संगीत का मूल्यांकन

ताल संगीत के मूल्यांकन का एक प्रमुख साधन है कहते है, एक बार 'बेसुरा' ग्राह्म होता है। बेताला नही तात्पर्य यह है कि स्वर से किंचित स्खलित संगकीत की ताल की जीवन शक्ति के कारण रसिको को अप्रिय नहीं लगता किन्तु सस्वर मधुर संगीत भी बेताला होने पर अप्रिया हो जाता है। किंचित बेसुरा होना मार्ग पर एक साधारण ठोकर लगना है किन्तु किंचित बेताला होना मार्ग पर फिसलकर गिर पड़ने के समान है। जिस प्रकार रणभूमि में योद्धा को और कवि सम्मेलन में कवि का उसकी क्षतिणिक शक्ति या प्रतिभा के कारण सम्मान या असम्मान प्राप्त होता है उसी प्रकार ताल कि आशु–प्रतिभा के ही बल पर एक संगीतज्ञ उत्तम और दूसरा संगीतज्ञ अधम घोषित किया जाता है।

गायन, वादन तथा नृत्य में विभिन्न अवयव होते है जैसे, स्थायी अंतरा 'संचार' आभोग। इन अवयवो का प्रदर्शन–काल में कृमिक विकास होता है और स्वरो के कृमिक उत्थान एवं पतन के द्वारा कुशल, गायक, वादक अपनी कला का प्रदर्शन करते है उत्थान एवं पतन कि कलात्मक अनुभूति का विकास ताल गति में भिगोये हुए विभिन्न सम–प्राकृतिक बोलो के द्वारा संभव होता है।

ताल और लोक रूचि का संबन्ध ताल और लोक रूचि का घनिष्ट सम्पर्क हैं। लोक रूचि ही ताल स्वरूपो का निर्माण करती रही है और लोक रूचि में परिवर्तन के साथ ही प्रचलित तालो में अंतर परिलक्षित हुये है। लोक रूचि और ताल स्वरूपो के सम्बन्ध का विवेचन करने के पूर्व लोक रूचि की विभिन्नता एवं प्राचीन ताल से आज तक की सामाजिक, राजनैतिक व अन्य परिस्थितियों के आधार पर उसका विश्लेषण आवश्यक हो जाता है। सभ्यता का जब प्रारंम्भ हुआ उस समय बर्बर मानव हृदय में सास्कृतिक क्षुधा की क्षणिक पूर्ति हो रही थी। शारीरिक आवश्यकताओ की पूर्ति में व्यस्त आदिम मानव को सास्कृतिक उपकरणो की उतनी आवश्यकता नहीं थी जितनी आज है तथापि आनंद के अवसरो पर जब हृदय उल्लासित होता था।

संगीत कि आवश्यकता उस मानव को हुई होगी करूणा के अतिरेक में अपने प्रिय जन को खोकर वह भी कृन्दन करता रहा होगा। तत्कालिन लोक रूचि की अभिव्यक्ति साहित्य, संगीत एवं अन्य कलाओं में हुई एवं विभिन्न माध्यमों से âदय की तीव्र भावनाओं को प्रदर्शन किया गया।

लयात्मकता या ताल स्वरूपो से विभिन्न रसो का निर्माण होता है अति प्राचीन काल का ताल केवल एक निश्चित गति का चित्रण मात्र ही था। 2, 3 या 4 मात्राओं के व्यवधान में मध्य लय भी द्रुत या विलम्बित से अधिक विकसित कल्पना प्रस्तर युग के मानव की नहीं थी। ताल वाधो के विविधता एवं उनसे सृजित विभिन्न ताल ध्वनियों अस्वाद में भी कृमिक विकास होता रहा है पृथक – पृथक वाद्यो का प्रयोग पृथक–पृथक समय में समरूप तालो के लिये करना रूचि के उस तत्व का परिचायक है जो मानव के रसिक मन में सुरूचि, सस्कृति एवं अन्य गुणो की पृष्ठभूमि बनकर परम्पराओं में कला एवं साहित्य कि दिशा बदलता रहा है।

हमारे तालो में कालखण्डो में प्रयोग हुये। केवल भारत ही नहीं संसार के अन्य संस्कृतिक देशो के गायन–वादन एवं नृत्य के लिए जिन लयसाम्यो के प्रयोग हुये है। उनमें भी निश्चित कालखण रहे है किन्तु सम और विसम कालखण्डो को मिलाकार तालो कि रचना एक मात्र भारतवर्ष में ही हुई है। जब बुद्धि के साथ–साथ हृदय पक्ष पर भी उनका चमत्कारिक

प्रभाव पड़ने लगा तब आगे क्लिष्ट ओर कठिन तालो का निर्माण भी गणित के आधार पर समाज में संभव हो सका।

ताल प्रधान वाद्य

अवनद्य वर्ग के वाद्य को वादक द्वारा किसी विशेष स्वर में मिला लेने के बाद उसे तुरंत किसी दूसरे स्वर में परिवर्तित करना आसान नहीं होता। धन वाध तो अपने निर्माण के समय से ही किसी विशेष स्वर में मिला होता है। प्रायः वादक उस स्वर में स्वंय कोई परिवर्तन नहीं कर सकता। अतएव अवनध व धन वर्ग के वाद्यो में से प्रत्येक का वादन करते समय वादक की इच्छानुसार तत्क्षण ध्वनि परिवर्तन कर सकने का गुण न होने के कारण इन वर्गा के वाधो में प्रायः गति प्रयोग व काल विभाजन द्वारा 'ताल' कि अभिव्यक्ति ही संभव होती अतः अवनद्ध ओर धन वाध स्वभावतः ताल प्रधान है।

ठोस होने के कारण धन वाद्यों में ढीलापन दबाब या खिचाव नहीं होता और इनकी ध्वनि सदा एक सी रहती है न यद्यपि हाथो कि क्रियाओ से भी काल विभाजन को प्रत्यक्ष करके दिखाया जा सकता है परन्तु धन वाधो की ध्वनि जितनी गूंज द्वारा स्पष्ट, जोरदार होती है उतनी हाथो की क्रियाओ की नहीं। इस लिये प्राचीन काल में भारतीय संगीत के धन वाद्यो का प्रयोग मुख्यतः कालमान स्पष्ट करने और ताल संबंधी निवृŸा अर्थात् बेताल न होने देने के लिये किया जाता रहा है। मुख्यतः ताल के लिये प्रयोग किये जाने के कारण ही प्रधान 'धन' वाध को ताल कहा गया। अतएव जहॉ धन वाध केवल ताल या उसकी गति के नियत रूप को प्रकट करते है, वहाँ अवनध वाध विविध ध्वनि युक्त पाटो के प्रयोग से लय, यति, ग्रह प्रस्तार आदि के द्वारा ताल में वैचित्रय सृष्टि करते हुये संगीत का उपरंजन करते है।

अतः हिन्दुस्तानी उच्चागं संगीत में धीरे–धीरे धन वाद्यो का महत्व कम होता गया और वर्तमान काल में उसकी मूल उपयोगिता समाप्त प्राय हो गई।

अतः हमारे भारतीय संगीत में गायन वादन अथवा नृत्य तीनों विद्या के साथ ताल वाद्यों का प्रयोग एवं विभिन्न तालों का प्रयोग सदैव से होता आया है। इन वाद्यों एवं तालों के प्रयोग के बिना कोई भी विद्या संगीत सुनने, देखने व समझने वाले श्रोतो को मधुर एवं आनन्द मयी प्रतीत नहीं होगी। अतः हम कह सकते है कि संगीत में ताल वाद्यो एवं तालों के बिना संगीत जगत सूना–सूना हो जायेगा। संगीत में ताल का विशेष महत्व है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारतीय तालो का शास्त्री विवेचन : डॉ. अरूण कुमार सेन
2. तबले का उद्गम विकास और वादश शौलियॅा : डॉ. योगमाया शुक्ला
3. पखावत तबला के घराने की परम्परा : डॉ. आबान ए मिस्त्री
4. ताल प्रकाश : भगवत शरण शर्मा
5. भारतीय संगीत वाद्य : डॉ. लालमणि मिश्र
6. भारतीय संगीत में ताल और रूप विधान : डॉ. श्रीमती सुभद्रा चौधरी
7- ताल शास्त्र : भगवत शरण शर्मा